International Journal of Multidisciplinary Research and Development

IJMRD 2014; 1(4): 151-153
www.allsubjectjournal.com
Received: 30-09-2014
Accepted: 10-10-2014
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
(ISRA) Impact Factor 1.762

Devesh Kumar Mishra
Assistant Professor, Sanskrit, Uttarakhand Open University, Teen pani bypass road, Haldwani, Nainital, India

Correspondence:
Devesh Kumar Mishra
Assistant Professor, Sanskrit, Uttarakhand Open University, Teen pani bypass road, Haldwani, Nainital, India.

उत्तराखण्ड में संस्कृत साहित्य की परम्परा

Devesh Kumar Mishra

शोध सारांश
उत्तराखण्ड में प्राप्त संस्कृत में अंकित अभिलेखों, ताम्रपत्रों आदि के साथ–साथ उपलब्ध प्राचीन संस्कृत साहित्य में साहित्यकारों के विषय में उल्लेख मिलता है। प्रसिद्ध है कि उत्तराखण्ड को देव भूमि कहा जाता है। यह क्षेत्र पुरातन काल से ही देवी–देवताओं की निवासस्थली रहा है। यहाँ की प्रत्येक घाटी, शिखर, वनखण्ड किसी न किसी ऋषि–मुनि या देवी–देवता के नाम पर हैं। अतः निश्चय रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इसी कारण देववाणी (संस्कृत) का प्रभाव भी यहाँ पर रहा होगा, किन्तु उपलब्ध प्रमाणों, विभिन्न अभिलेखों, ताम्रपत्रों एवं शिलालेखों में तथा समय–समय पर प्राप्त प्राचीन संस्कृत साहित्य की पाण्डुलिपियों में ऐसी सूचना अवश्य प्राप्त होती है जिससे पता चलता है कि उत्तराखण्ड में संस्कृत साहित्य की परम्परा नवीन न होकर प्राचीन थी।

प्रस्तावना
उत्तराखण्ड पूर्व में उत्तर प्रदेश के ही एक भाग के रूप में अवस्थित था , जो 10 नवम्बर सन् 2000 ईसवी में अलग राज्य के रूप में स्थान प्राप्त किया । प्राचीन काल में भी यह क्षेत्र उत्तरांचल नाम से जाना जाता था। विद्वत परम्परा यह मानती है कि स्कन्दपुराण में उत्तराखण्ड के गढ़वाल एवं कुमाऊँ को केदारखण्ड एवं मानसखण्ड के रूप में कहा गया है। इनमें गढ़वाल एवं कुमाऊँ का सुरम्य और प्रामाणिक वर्णन प्राप्त होता है। **"उपगह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धियः विप्रोऽजायत्"** की मान्यता के अनुसार यह स्थान तपस्थली के रूप में विश्रुत है। शिव–पार्वती का तो यह स्थान ही माना जाता है।भारतवर्ष के उत्तर में स्थित हिमशिखरों से सुशोभित उत्तराखण्ड का संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि में योगदान है। अनुमानित है कि हिमालय की कन्दराओं और नदियों के संगम तटों पर ही वैदिक ऋषियों को वेद मंत्रों का साक्षात्कार प्राप्त हुआ था।
उत्तराखण्ड में संस्कृत साहित्य की अजस्र धारा पुराने जमाने से ही अविरल रूप से चली आ रही है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के होने की प्रबल संभावना व्यक्त की जाती है लेकिन यथासमय प्रकाश में न आ पाने से यह अमूल्य निधि अब नष्ट भ्रष्ट होकर लुप्तप्राय हो चली है।
उत्तराखण्ड में संस्कृत साहित्य की परम्परा को जानने के लिये गढ़वाल तथा कुमाऊँ में संस्कृत साहित्य की परम्परा का अलग – अलग अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत हो जाता है।

गढ़वाल में संस्कृत साहित्य की परम्परा
वन – पर्वत और प्राकृतिक सम्पदा के कारण गढ़वाल और कुमाऊँ भारतीय समाज के लिए साहित्यिक, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक आकर्षण के विषय रहे हैं। भारतीय संस्कृत साहित्य का मूल वैदिक साहित्य है। संस्कृत को समस्त भारतीय भाषाओं की जननी माना जाता है। भाषा के माध्यम से व्यक्ति और समाज अपने भावों को अभिव्यक्ति देते हैं। भाषा के सदैव दो रूप रहे हैं। एक राजनैतिक काम–काज में प्रयुक्त होने वाली और समाज के प्रबुद्ध वर्ग के द्वारा साहित्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा तथा दूसरी बोलचाल की भाषा। प्राचीन काल में वैदिक ऋषि मुनियों की तपस्थली, उनके विद्याकेन्द्र (आश्रम), साधना भूमि आदि हिमालय की उपत्यकाओं में ही थे। इस तथ्य पर विद्वानों में सहमति बनती दिखाई देती है। हिमालय का यह क्षेत्र गढ़वाल (प्राचीन केदारखण्ड) था जहाँ तपस्या से आत्मबोध प्राप्त होता था । वैदिक काल का समग्र साहित्य वैदिक संस्कृत में प्राप्त है। अतः मानना होगा कि उस काल की राजभाषा संस्कृत रही होगी। गंगा–यमुना की पवित्र धारा की तरह संस्कृत साहित्य की अजस्र धारा भी हिमालयी क्षेत्र से निकलकर सर्वत्र व्याप्त हुई होगी। ऋग्वेद में जिन ऋषि परिवारों के सूक्त संकलित हैं उनमें भारद्वाज तथा अत्रि ऋषि का घनिष्ठ सम्बद्ध गढ़वाल प्रदेश से प्रतीत होता है।ऐसा इसलिये की प्राचीन ऋषियों के अनेक स्थान (विद्याकेन्द्र या आश्रम) आज भी गढ़वाल में उन्हीं के नाम से प्रचलित हैं।
वैदिक काल के बाद पौराणिक काल के अनेक ऋषि मुनियों के आश्रम भी केदारखण्ड (गढ़वाल) में होने का उल्लेख प्राप्त होता है यथा– नर–नारायण आश्रम, उपमन्यु आश्रम, व्यास आश्रम, कण्व आश्रम, अगस्तमुनि आश्रम, भृगु आश्रम आदि के उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि गढ़वाल में संस्कृत की जड़े बहुत गहरी है। इन आश्रमों में गुरू द्वारा शिष्यों को वैदिक ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी तथा ये आश्रम सतत् वेद–मंत्रों की ध्वनियों तथा यज्ञधूम से व्याप्त रहा करते थे। पौराणिक ग्रन्थों के अन्तःसाक्ष के आधार पर यह तथ्य भी पुष्ट होता है कि बदरीनाथ के समीप सरस्वती के तट पर व्यास और जैमिनि ऋषियों के आश्रम थे। यहीं पर व्यास ने महाभारत और अट्ठारह पुराणों की रचना की होगी।

कश्यप और चरक का आश्रम गन्धमादन पर्वत (बदरीनाथ) पर, मरीचि और अंगिरा का आश्रम अलका प्रदेश और वसुधारा के मध्यवर्ती पर्वत के मूल में (अलकापुरी की ओर) कपिल और सनत्कुमारों का हरिद्वार में वशिष्ठ–अरून्धती का हिमदाश्रम (हिदाऊ में), जनु और जमदग्नि का आश्रम उत्तरकाशी के समीप, गर्ग का आश्रम द्रोणगिरि में, मनु का आश्रम माना (माणा गॉव में), पतंजलि का आश्रम ऋषिकेश के निकट तपोवन में, अगस्त्य व गौतम का आश्रम मन्दाकिनी नदी के तट पर, विश्वामित्र और दुर्वासा का आश्रम ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) के पास तपोवन में, पाराशर का यमुनोत्री में, भृगु का केदारकांठा के पास, अत्रि–अनुसूया का गोपेश्वर के पास, कण्व का आश्रम मालिनि के तट पर कोटद्वार के पास तथा बाल्मीकि का आश्रम पौड़ी के निकट सीतोन्स्यू में होने के प्रमाण मिलते है।यह संभव है कि जिस गढ़वाल में ऋषि–मुनियों के आश्रम थे जहाँ दिन–रात वेद–मंत्रों की ध्वनि गूँजती थी वहाँ राजकार्य की भाषा संस्कृत रही होगी क्योंकि राज्य की राजभाषा का प्रभाव जन–जीवन एवं समाज की शिक्षा–दीक्षा पर पड़ता ही है। कालान्तर में राजनीतिक, अस्थिरताओं के नाते इन परम्पराओं के

फल सुरक्षित नहीं रह पाये होगें, केवल उनका स्मरण दिलाने वाले स्थान मात्र ही शेष रह गए।लौकिक संस्कृत के महाकवि कुलगुरू कालिदास के काव्यों में वर्णित मास–नक्षत्र, विवाह कर्म, प्राकृतिक सौन्दर्य, अलकापुरी वर्णन, मेघदूतम् का मेघ–मार्ग वर्णन आदि से विद्वानों के इस तर्क को बल मिलता है कि कालिदस की जन्मस्थली गढ़वाल रही होगी किन्तु इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। गढ़वाल के अर्न्तगत गुप्तकाशी के निकट स्थित 'कालीमठ' ही वह स्थल है जहाँ मूर्ख कालिदास 'काली देवी' की उपासना करके उनकी कृपादृष्टि से कालान्तर में महाकवि कालिदास बन गए।वस्तुतः संस्कृत साहित्य में दो कालिदास का उल्लेख है । जनश्रुति है कि आदि शंकराचार्य के गुरू गोविन्दपाद का विद्या केन्द्र (आश्रम) कर्णप्रयाग के पास 'सिमली' में था। इस प्रकार इन विभिन्न ऋषि–मुनियों के नाम पर आधारित आश्रमों वर्तमानता में प्रामाणिक है कि प्राचीन काल में गढ़वाल में संस्कृत की स्थिति अत्यन्त समृद्ध रही होगी।

गढ़वाल में प्राप्त साक्ष्य

यद्यपि उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र में संस्कृत भाषा में पठन–पाठन, ग्रन्थ लेखन आदि के प्रमाण प्राचीन काल से मिलते है तथापि उनमें से अधिकांश कालकवलित हो गये और आज अप्राप्य है तथापि यहॉ प्राप्त अभिलेख प्राचीन काल से गढ़वाल में संस्कृत की समृद्ध परम्परा के परिचायक हैं।

देवप्रयाग में प्राप्त यात्री नामावली

देवप्रयाग में दूसरी शताब्दी से पाँचवी शताब्दी तक उत्तराखण्ड (बदरी–केदार) की यात्रा पर आए हुए यात्रियों का नामोल्लेख संस्कृत में प्राप्त होना इस तथ्य का सूचक है कि तब यहाँ संस्कृत भाषा प्रचलन में रही होगी।

उत्तरकाशी का शक्तिस्तम्भ लेख

उत्तरकाशी के गोपेश्वर तथा द्वाराहाट में त्रिशूल पर उत्कीर्ण लेख की भाषा भी संस्कृत है। यह लेख 12 वीं शताब्दी का है। इस लेख में गणेश्वर नामक नरेश द्वारा राज–पाट छोड़कर कैलाश प्रस्थान के पश्चात् उसके पुत्र श्रीगृह के राज्यारूढ़ होने का तथा उसके गुणों एवं कीर्ति का वर्णन प्राप्त होता है। यह अभिलेख ''श्रीगृह का त्रिशूल अभिलेख'' कहलाता है।

अनुसूया देवी मन्दिर मार्ग पर पाषाण अभिलेख

इस अभिलेख में लिखे गये तथ्यों की भाषा संस्कृत है। इसका समय छठी शताब्दी के आस–पास का माना गया है। इसमें राजा सर्ववर्मन से संबंधित विवरण अंकित किये गये हैं।

पलेठी का शिलालेख

गंगा और अलकनन्दा के संगम पर स्थित देवप्रयाग से लगभग 12 किमी. दूर पश्चिमोत्तर में टिहरी के अर्न्तगत पट्टी खास की गहरी घाटी में स्थित पलेठी के प्राचीन मन्दिरों के अवशेषों पर उत्कीर्ण शिलालेख संस्कृत भाषा में हैं। ये अभिलेख अत्यन्त टूटी–फूटी स्थिति में हैं। इनका समय लगभग 7 वीं शताब्दी माना गया है। इन अभिलेखों में से एक में तो राजा आदित्यवर्मन, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर कल्याणवर्मा, आदित्यवर्धन तथा करवर्धन का सन्दर्भ है जबकि दूसरे खण्डित लेख में कल्याणवर्मन् और आदित्यवर्मन के नाम हैं।

लाखामण्डल–ईश्वरा का शिलालेख

यह शिलालेख छठी से सातवी शताब्दी का है। इसकी भाषा संस्कृत है। इसमें द्विजवर्मन् के शासनकाल में ब्रह्मपुर जिले में स्थित कार्तिकेयपुर का वर्णन किया गया है, जो कि वर्तमान जोशीमठ प्रतीत होता है। यह शिलालेख यदुवंशी राजर्षि सेनवर्मन् के आगे उसके पुत्र पौत्र प्रपौत्र आदि वंशावली का वर्णन करता है।

कालीमठ शिलालेख

कालीमठ के मन्दिर की दीवारों पर रूद्रसूनु का शिलालेख संस्कृत भाषा में है। इसका समय 10 वीं से 12 वीं शताब्दी है। यह कत्यूरी कालीन शिलालेख प्रतीत होता है। यह लेख मात्र 18 पंक्तियों का है। इसमें गिरिपति मंदिर के संरक्षक किन्हीं रूद्र नामक सामन्त के पुत्र(रूद्रसूनु) बालपन में सर्व विजेता बन गए थे और उनके द्वारा ही इस मन्दिर का निर्माण करवाया गया था , इस आशय का लेख प्राप्त होता है।

नाला–मणदेव का शिलालेख

गुप्तकाशी से एक मील दूर नाला में पत्थर का एक स्तूप है, जो बौद्ध धर्म के चिह्न का अवशेष प्रतीत होता है। नाला के समीप 'ललितामाई' मन्दिर के पास स्थित छोटे मन्दिर के द्वार के ऊपर एक शिलालेख है। यही मणदेव का शिलालेख कहलाता है। इसमें 1203 वि0 में मन्दिर निर्माण का उल्लेख संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण किया गया है।

अन्य अभिलेख

इनके अलावा चाँदपुर गढ़ी का शिलालेख (कनकपाल से संबंधित), गोपेश्वर में प्राप्त अशोकचल्ल का अभिलेख, वाराहाट (उत्तरकाशी) में प्राप्त त्रिशूल के निचले भाग का लेख, देवप्रयाग के क्षेत्रपाल के मन्दिर–द्वार के ऊपर सहजपाल का शिलालेख, देवप्रयाग में ही रघुनाथ मंदिर के पीछे वामन गुफा के प्रवेश स्थान के ऊपर अंकित शिलालेख, महाराज फतेहशाह के सिक्के का लेख, उत्तरकाशी के परशुराम मंदिर पर अंकित अभिलेख, यहीं के विश्वनाथ मंदिर द्वार पर अंकित अभिलेख, टिहरी के बदरीनाथ मंदिर के ऊपर दरवाजे पर अंकित अभिलेख तथा कत्यूरी अभिलेख, जिनमें पाँच ताम्रपत्रांकित लेख और एक शिलालेख है, भी गढ़वाल में संस्कृत की समद्ध परम्परा को दर्शाते

कुमाऊँ में संस्कृत साहित्य की परम्परा

गढ़वाल की अपेक्षा कुमाऊँ में प्राचीन काल से ही संस्कृत साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यहाँ 8 वीं शताब्दी के बाद अनेकानेक कवि तथा साहित्यकार हुए उनके द्वारा रचित पर्याप्त संस्कृत साहित्य उपलब्ध है। कुमाऊँ में चन्द राजाओं का आगमन 700 ई0 के लगभग हुआ। इससे पूर्व यहाँ कत्यूरियों का राज था। उस काल के अनेक ताम्रपत्र, शिलालेख आदि प्राप्त हुए हैं जो संस्कृत भाषा में अंकित है। चन्दों का शासन काल तो कुमाऊँ में संस्कृत के विकास एवं प्रचार–प्रसार की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। चन्द नरेश संस्कृतानुरागी थे। वे काशी से संस्कृत विद्वानों को अपने यहाँ आमंत्रित करते थे। चन्द शासकों ने संस्कृत को राजभाषा का दर्जा दिया। इस तरह यह काल संस्कृत के लिए स्वर्णिम काल माना जाता है।वर्तमान में उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि कुमाऊँ के सर्वप्रथम ज्ञात साहित्यकार श्रीहरिहर है। यह परम्परा अविच्छिन्न रही। कुमाऊँ के संस्कृत साहित्यकारों का परिचय इस प्रकार है –

आचार्य हरिहर एवं उनके ग्रन्थ

श्रीहरिहर कुमाऊँ में चन्दवंशी राजाओं के मूल पुरूष सोमचन्द के साथ यहाँ बदरीनाथ की यात्रा हेतु आए और यही बस गए। राजा सोमचन्द का समय इतिहासकारों के अनुसार 700–721 ई. के आस–पास माना गया है। अतः हरिहर का समय भी तभी का माना जा सकता है। हरिहर मूलतः कान्यकुब्ज प्रदेश के पैती ग्राम के कश्यप गोत्री ब्राह्माण थे। कुमाऊँ में ये कश्यप गोत्री 'पाण्डे' कहलाते हैं। श्रीहरिहर ने पारस्कर गृह्यसूत्र पर 'भाष्य' की रचना की थी। कुमाऊँ में प्रचलित कर्मकाण्ड में श्रीहरिहर का नाम आदर से लिया जाता है। हरिहर विरचित 'भाष्य ग्रन्थ में तीन काण्ड और 51 कण्डिकाएं है। प्रथम काण्ड में होमविधि, अरणिमन्थन, विवाहविधि के प्रधान अंग, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण तथा अन्नप्राशन आदि संस्कारों का वर्णन है। द्वितीय काण्ड में चूड़ाकर्म, उपनयन, ब्रह्मचर्यव्रत, पंचमहाज्ञविधि, इन्द्रयज्ञ तथा सीतायज्ञ प्रधान रूप से वर्णित हैं। तृतीय काण्ड में नवान्नभोज विधि, अशौच विधान, प्रायश्चित विधान, सभा प्रवेश विधि, हस्त्यारोहरण, कर्मविधान तथा अष्टकाश्राद्धपद्धति आदि विषयों का समावेश है।

केदार पाण्डे एवं उनके ग्रन्थ

श्रीहरिहर के बाद 12 वीं शताब्दी में जन्में श्री केदारपाण्डे द्वारा विरचित ग्रन्थ 'वृत्तरत्नाकर' ही आज उपलब्ध है। बीच की कालावधि की कोई रचना आज प्राप्त नहीं है। संभवतः इस बीच की रचनाएं नष्ट हो चुकी है। केदार पाण्डे आचार्य हरिहर की ही 10 वीं पीढ़ी में उत्पन्न पद्मापति पाण्डे के पुत्र थे। यद्यपि पद्मापति स्वयं शैवदर्शन के प्रकाण्ड विद्वान थे किन्तु इनका कोई ग्रन्थ आज नहीं मिलता। केदार पाण्डे का 'वृत्तरत्नाकर' छन्दशास्त्र विषयक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल 1135 ई. के आस–पास मान्य है। यह केदार पाण्डे की एकमात्र रचना है। 136 श्लोकों में विरचित यह ग्रन्थ 6 अध्यायों में विभक्त है। इस ग्रन्थ की 30 से अधिक टीकाएँ हो चुकी, जिनमें विक्रम भट्ट की टीका सबसे पुरानी मानी जाती है।

राजा रूद्रचन्द देव एवं उनके ग्रन्थ

राजा रूद्रचन्द देव द्वारा विरचित चार ग्रन्थ उषारागोदया नाटिका तथा त्रैवर्णिक धर्मनिर्णय,ययातिचरितम् है। इनमें से उषारागोदया नाटिका सन् 1979 ई. में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित हो चुकी है। श्यैनिकशास्त्रम् प्राचीन काल में प्रचलित आखेट विद्या का प्रामाणिक ग्रन्थ है तो त्रैवर्णिक–धर्मनिर्णय स्मृति तुल्य (मनुस्मृति आदि की तरह) ग्रन्थ है। इनका ययातिचरितम् ग्रन्थ अनुपलब्ध है। राजा रूद्रचन्द मुगल सम्राट अकबर के समकालीन थे। इनका समय 16 वीं सदी का उत्तरार्ध माना जाता है।

रूद्रमणि जोशी एवं उनका साहित्य

रूद्रमणि अपने समय के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। ये चन्द राजा बाजबहादुर के सभा पण्डित थे। अतः इनका समय सन् 1638–1678 ई0 मान्य है। ये अल्मोड़ा से कुछ दूरी पर स्थित 'माला' गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम श्री महादेव था। पण्डित रूद्रमणि की दो रचनाएँ है – 'रूद्रप्रदीप' एवं 'ज्योतिषचन्द्रार्क'। रूद्रप्रदीप इनकी पहली रचना है। इसमें लेखक ने सूक्ष्म रूप से फलित विषयों का निर्देश किया है। रूद्रप्रदीप में पाँच अध्याय है, जिनमें विभिन्न कर्मकाण्डों की पद्धतियों का परिचय छंदोबद्ध रूप में दिया गया है। ज्योतिषचन्द्रार्क में कुल आठ अध्याय हैं जिनमें से प्रारम्भ के पाँच अध्याय प्रकाशित भी हो चुके हैं। रूद्रमणि ने 'काशिका' नाम से इस ग्रन्थ की टीका भी स्वयं लिखी है।

अनन्तदेव एवं उनका साहित्य

अनन्तदेव राजा बाजबहादुरचन्द के दरबारी कवि थे। अतः इनका समय भी 17 वीं शताब्दी का उत्तर भाग सिद्ध होता है। अनन्तदेव मूलतः महाराष्ट्र के थे किन्तु इन्होंने अपनी संस्कृत साधना बाजबहादुर के आश्रय में की। अनन्तदेव की संस्कृत

साहित्य को देन अमूल्य है। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की –

(1) स्मृतिकौस्तुभ
(2) प्रायश्चितदीपिका
(3) कालबिन्दुनिर्णय
(4) अग्निहोत्रप्रयोग
(5) आग्रहायणप्रयोग
(6) चातुर्मास्य प्रयोग
(7) अन्त्येष्टि पद्धति
(8) नक्षत्र सत्र प्रयोग
(9) भगवन्नामकौमुदी प्रकाश टीका
(10) भगवद्भक्तिनिर्णय
(11) मथुरासेतु
(12) मीमांसान्यायप्रकाशी की टीका(भट्टालंकार)
(13) वाक्य भेदभाव
(14) देवतातत्त्वविचार
(15) सिद्धान्त तत्त्व

कुमाऊँ में प्राप्त साक्ष्य

कूर्मांचल में संस्कृत साहित्य की एक समृद्ध परम्परा रही। विक्रम की तीसरी सदी के प्रारंभिक वर्षों के कुछ सिक्के अल्मोड़ा में मिले हैं, जिनमें संस्कृत से प्रभावित पालि तथा प्राकृत भाषा का प्रयोग मिलता है। तीसरी शताब्दी के बाद के प्राप्त सभी अभिलेख संस्कृत भाषा में छन्दोबद्ध हैं। सातवीं सदी के बाद के जो ताम्रपत्रांकित अभिलेख मिले हैं उनमें समास बहुल संस्कृत गद्य–पद्य की वही छटा देखने को मिलती है जो दण्डी, बाण और सुबन्धु की शैली में दिखाई देती है।कुमाऊँ में संस्कृत भाषा में लिखे सबसे प्राचीन लेख अल्मोड़ा जनपद के 'तालेश्वर' से प्राप्त हुए हैं। ये लेख छठी से सातवीं सदी के हैं। अल्मोड़ा के जागेश्वर के महामृत्युंजय मन्दिर में संस्कृत भाषा में अंकित लेख 8 वीं से 10 वीं शताब्दी का है। इसी तरह बागेश्वर के बैजनाथ मन्दिर में 11 वीं सदी का संस्कृत भाषा में लिखा लेख प्राप्त होता है। चन्द नरेश रूद्रचन्द देव द्वारा सन् 1568 ई. से सन् 1596 ई. तक जारी किए गऐ 6 ताम्रपत्रांकित लेख संस्कृत भाषा में होने की जानकारी मिलती है। इसके अलावा राजा लक्ष्मणचन्द (1620 ई.) का, त्रिमलचन्द का (1633 ई.), बाजबहादुरचन्द का (1720 ई.) ताम्रपत्र संस्कृत भाषा में है।

निष्कर्ष

उत्तराखण्ड के गढ़वाल एवं कुमाऊँ दोनो क्षेत्रों में अनेकानेक अभिलेख–ताम्रपत्र–शिलालेख आदि की प्राप्ति होना इस क्षेत्र में संस्कृत के प्रचलन के प्रमाण है। गढ़वाल में यद्यपि प्राचीन संस्कृत साहित्य आज उपलब्ध नहीं है तथापि निश्चित रूप से वहाँ संस्कृत साहित्य की स्थिति रही होगी जो राजनीतिक अस्थिरता और विदेशी आक्रमण के कारण या तो नष्ट हो गया या अन्यत्र ले जाया गया। कुमाऊँ में प्राप्त अभिलेखीय सामग्री तथा लिखित संस्कृत साहित्य इस क्षेत्र में संस्कृत साहित्य की उत्कृष्ट परम्परा के परिचायक है। अतः भारतवर्ष का यह भूभाग भी संस्कृत की रचना परम्परा को बनाये रखने में कम सहयोगी नहीं रहा है । गढ.वाल और कुमाउॅ दोनों क्षेत्रों में संस्कृत भाषा का प्रचलन रहा है और उसमें प्रभावशाली रचनायें भी हुई है । केवल जनश्रुति में ही नहीं बल्कि उपलब्ध प्रमाण आदि इस तथ्य के साक्षी है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. गढ़वाल की संस्कृत साहित्य को देन – डॉ प्रेमदत्त चमोली
2. कूर्मांचल में संस्कृत साहित्य की परम्परा – बसन्तबल्लभ भट्ट
3. कुमाऊँ का इतिहास – बद्रीदत्त पाण्डे